International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 5, September 2021 |

महाकवि भवभूति के नाटकों में जीवन मूल्यों का निरूपण

Manisha Gupta

Assistant Professor, Department of Sanskrit Department, Govt. College, Nagar, Bharatpur, Rajasthan, India

सार: भवभूति के नाटकों में भी कवि का अपने राष्ट्र के वनों, पर्वतों, नदियों और जनों तथा राज्य सत्ता से लगाव चित्र दृष्टिगत होते है । जिनसे भवभूति की राष्ट्रीय जीवन मूल्यों का ज्ञान हमें प्राप्त होता है अन्यादि - यज्ञ भारतीय संस्कृति का मूल्य है गीता में यज्ञ पर ही संसार को आधृत माना गया है।

I. परिचय

भवभूति, संस्कृत के महान कवि एवं सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। उनके नाटक, कालिदास के नाटकों के समतुल्य माने जाते हैं। भवभूति ने अपने संबंध में महावीरचरित् की प्रस्तावना में लिखा है। ये विदर्भ देश के 'पद्मपुर' नामक स्थान के निवासी श्री भट्टगोपाल के पोते थे। इनके पिता का नाम नीलकंठ और माता का नाम जतुकर्णी था। इन्होंने अपना उल्लेख 'भट्टश्रीकंठ पछलांछनी भवभूतिर्नाम' से किया है। इनके गुरु का नाम 'ज्ञाननिधि' था। मालतीमाधव की पुरातन प्रति में प्राप्त 'भट्ट श्री कुमारिल शिष्येण विरचित मिंद प्रकरणम्' तथा 'भट्ट श्री कुमारिल प्रसादात्प्राप्त वाग्वैभवस्य उम्बेकाचार्यस्येयं कृति' इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि श्रीकंठ के गुरु कुमारिल थे जिनका 'ज्ञाननिधि' भी नाम था और भवभूति ही मीमांसक उम्बेकाचार्य थे जिनका उल्लेख दर्शन ग्रंथों में प्राप्त होता है और इन्होंने कुमारिल के श्लोकवार्तिक की टीका भी की थी। संस्कृत साहित्य में महान् दार्शनिक और नाटककार होने के नाते ये अद्वितीय हैं। इनको करूण रस के कवि भी कहा जाता है ! पांडित्य और विद्वत्ता का यह अनुपम योग संस्कृत साहित्य में दुर्लभ है।

शंकरदिग्विजय से ज्ञात होता है कि उम्बेक, मंडन सुरेश्वर, एक ही व्यक्ति के नाम थे। भवभूति का एक नाम 'उम्बेक' प्राप्त होता है अत: नाटककार भवभूति, मीमांसक उम्बेक और अद्वैतमत में दीक्षित सुरेश्वराचार्य एक ही हैं, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है।

राजतरंगिणी के उल्लेख से इनका समय एक प्रकार से निश्चित सा है। ये कान्यकुब्ज के नरेश यशोवर्मन के सभापंडित थे, जिन्हें ललितादित्य ने पराजित किया था। 'गौड़वाहो' के निर्माता वाक्पतिराज भी उसी दरबार में थे अत: इनका समय आठवीं शताब्दी का पूर्वार्ध सिद्ध होता है।

भवभूति, पद्मपुर में एक देशस्थ ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे। पद्मपुर महाराष्ट्र के गोंदिया जिले में महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश की सीमा पर स्थित है।[1,2,3]

अपने बारे में संस्कृत कवियों का मौन एक परम्परा बन चुका है, पर भवभूति ने इस परम्परागत मौन को तोड़ा है और अपने तीनों नाटकों की प्रस्तावना में अपना परिचय प्रस्तुत किया है। 'महावीरचरित' का यह उल्लेख—

अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुर नाम नगरम्। तत्र केचित्तैत्तिरीयाः काश्यपाश्चरणगुरवः पंक्तिपावनाः पंचाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पंचमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्डपदलांछनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतानाम जातुकर्णीपुत्रः।....

(अनुवाद : 'दक्षिणापथ में पद्मपुर नाम का नगर है। वहाँ कुछ ब्राह्मज्ञानी ब्राह्मण रहते हैं, जो तैत्तिरीय शाखा से जुड़े हैं, कश्यपगोत्री हैं, अपनी शाखा में श्रेष्ठ, पंक्तिपावन, पंचाग्नि के उपासक, व्रती, सोमयाज्ञिक हैं एवं उदुम्बर उपाधि धारण करते हैं। इसी वंश में वाजपेय यज्ञ करनेवाले प्रसिद्ध महाकवि हुए। उसी परम्परा में पाँचवें भवभूति हैं जो स्वनामधन्य भट्टगोपाल के पौत्र हैं और पवित्र कीर्ति वाले नीलकण्ठ के पुत्र हैं। इनकी माता का नाम जातुकर्णी है और ये श्रीकण्ठ पदवी प्राप्त, पद, वाक्य और प्रमाण के ज्ञाता हैं।)

'श्रीकण्ठ पदलांछनः भवभर्तिनाम' इस उल्लेख से यह प्रकट होता है कि श्रीकण्ठ कवि की उपाधि थी और भवभूति नाम था। किन्तु कुछ टीकाकारों का यह विश्वास है कि कवि का नाम नीलकण्ठ था और भवभूति उपाधि थी, जो उन्हें कुछ विशेष पदों की रचना की प्रशंसा में मिली थी। इस पक्ष की पुष्टि में 'महावीरचरित' एवं 'उत्तररामचरित' के टीकाकर वीर राघव1 ने इस वाक्य की व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की है—

श्रीकण्ठपदं लांछनं नाम यस्य सः। 'लांछनो नाम-लक्ष्मणोः' इति रत्नमाला। पितृकृतनामेदम्...भवभूतिर्नाम 'साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः।' इति श्लोकरचना सन्तुष्टेन राज्ञा भवभूतिरिति ख्यापितः।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 5, September 2021 |

इस व्याख्या के अनुसार 'श्रीकण्ठ', भवभूति का नाम था, क्योंकि 'लांछन' शब्द नाम का परिचायक है। 'साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः'—शिव की भस्म से पवित्र निग्रहवाली माता पार्वती तुम्हें पवित्र करें—इस श्लोक की रचना से प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें 'भवभूति' पदवी से सम्मानित किया।
जगद्धर 'मालती माधव' की टीका में ' नाम्ना श्रीकण्ठः; प्रसिद्धया भवभूतिरित्यर्थः' तथा त्रिपुरारि ने भी इसी नाटक की टीका में 'भवभूतिरित व्यवहारे तस्येदं नामान्तरम्' कहकर इसी मत का प्रतिपादन किया है कि श्रीकण्ठ का नाम था और भवभूति प्रसिद्धि तथा व्यवहार का नाम था।

'उत्तररामचरित' के टीकाकार घनश्याम के शब्द 'भवात् शिवात् भूतिः भस्म सम्पद् यस्य ईश्वरेणैव जाति द्विजरूपेण विभूतिर्दत्ता'—कि स्वयं भव (शिव) ने कवि को अपनी 'भूति' प्रदान की, अतः उसे 'भवभूति' पुकारा गया, - इसी मत की पुष्टि करते हैं।[4,5,6]

रचनाएँ
भवभूति द्वारा रचित तीन नाटक प्राप्त होते हैं -

- महावीरचरितम्
- उत्तररामचरितम्
- मालतीमाधव

महावीरचरित्
जिसमें रामविवाह से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा निबद्ध की गई है। कवि ने कथा में कई काल्पनिक परिवर्तन किए हैं जिनसे चिरपरिचित रामकथा में रोचकता आ गई है। यह वीररसप्रधान नाटक है।

उत्तररामचरित्
संस्कृत साहित्य में करुण रस की मार्मिक अभिव्यंजना में यह नाटक सर्वोत्कृष्ट है। इसमें सात अंकों में राम के उत्तर जीवन को, जो अभिषेक के बाद आरंभ होता है, चित्रित किया गया है जिसमें सीतानिर्वासन की कथा मुख्य है। अंतर यह है कि रामायण में जहाँ इस कथा का पर्यवसान (सीता का अंतर्धान) शोकपूर्ण है, वहाँ इस नाटक की समाप्ति राम सीता के सुखद मिलन से की गई है।

मालतीमाधव
यह 10 अंकों का प्रकरण है जिसमें मालती और माधव की कल्पनाप्रसूत प्रेमकथा है। युवावस्था के उन्मादक प्रेम का इसमें उत्कृष्ट वर्णन है। इसमें स्थान स्थान पर प्रकृति का विशेष वर्णनचित्र प्राप्त होता है।

भाषा-शैली
भाषा और शैली के प्रयोग में इनकी विचक्षणता अद्वितीय है। सरल और क्लिष्ट, समाससंकुल गाढ़बंध और समासरहित दोनों प्रकार की शैलियों का इन्होंने उत्कृष्ट प्रयोग किया है-कहीं मधुर पदावली और कहीं विकट गाढ़बंध। साथ ही उनकी भाषा अवसर ओर व्यक्ति के अनुरूप होती है। उनकी शैली में वाच्यार्थ की प्रधानता है किंतु व्यर्थ का वागाडंबर नहीं। प्रकृति के घोर और प्रचंड रूप की ओर कवि का ध्यान अधिक है। साथ ही अर्थ के अनुरूप ध्वनि उत्पन्न करने में कवि का नैपुण्य पदे-पदे व्यंजित होता है।

यह एक नाटक ही कवि की प्रतिमा और पांडित्य की अभिव्यक्ति के लिए अलं है। इन्होंने कहा है - 'एको रस: करुण एव' (करूणरस ही एकमात्र रस है)। इस नाटक में अनेक रसों का रूप धारण करके करुण रस सहृदयों के हृदय पर अपना प्रभाव छोड़ जाता है। अपने नाटक में प्रेम के जिस उच्च और आदर्श रूप की कवि ने प्रतिष्ठा की है वह अवस्था के साथ ढलता नहीं और भी पूर्ण तथा उदात्त रूप प्राप्त करता है। संभवत: यही कारण है कि कवि ने नारी के बाह्य सौंदर्य के वर्णन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है और उसके अंतःसौंदर्य को ही उद्घाटित किया है। प्रेम की इस पवित्रता के साथ विश्वास की महिमा, हृदय की महत्ता, भाषा क गंभीरता और भावों के तरंगायित क्रीड़ाविलास में यह नाटक साहित्य में 'एको रस: करुण एव' के समान एक ही है।

पांडित्य और प्रतिभा के घनी भवभूति के नाटकों में शास्त्रों का व्यापक ज्ञान, भाषा की प्रौढ़ता, भाव की गरिमा और निरीक्षण की सूक्ष्मता के कारण सरसता के स्थान पर गांभीर्य और उदात्तता विशेष प्राप्त होती है। संभवत: इन कारणों से उस समय कवि की रचनाएँ अधिक लोकप्रिय न हो सकीं और उनके नाटकों का उस समय किसी राजसभा में अभिनय न हो सका। उज्जयिनी में के अवसर पर एकत्र पुरवासियों के समक्ष की उनके नाटकों का अभिनय हुआ और तदनंतर वे यशोवर्मा के राज्य में समादृत हुए। मालतीमाधव की प्रस्तावना में उनकी गर्वोक्ति 'ये नाम केचिदिह न: प्रथयन्त्यवज्ञाम्' (जो कुछ लोग मेरी अवज्ञा कर रहे हैं।..) संभवत: उन्हीं दुरालोचकों के प्रति है जिनसे ये निरादृत होते रहे।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 5, September 2021 |

II. विचार-विमर्श

भवभूति का व्यक्तित्व सबल भावों का अभिव्यंजक हैं। अपने साहसिक प्रयोग द्वारा भवभूति ने संस्कृत नाट्य जगत में एक नव-काव्य विधा का सृजन किया हैं। कलात्मक अभिव्यक्ति की नूतन परंपरा का प्रवर्तन करते हुए संस्कृत नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि में विशेष योगदान दिया है। कवि भवभूति ने अपनी कृतियों के माध्यम से नाट्य साहित्य के क्षेत्र में युग चेतना को एक अभिनव स्वर प्रदान किया है।

महाकवि भवभूति की शैली की प्रमुख विशेषताएँ
महाकवि भवभूति की भाषा सबल, संपुष्ट, परिष्कृत और संतुलित है। उन्होंने अपने नाटकों में संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है। भवभूति की शैली की प्रमुख विशेषताए हैं – दृष्टी में पौढ़ीत्व, उदारता तथा अर्थगौरव; और यही तीन गुण पांडित्य तथा विदग्धता की कसौटी होते हैं ऐसा वह मानते थे। महाकवि भवभूति ने सरल और जटिल प्रसंगो के अनुरूप भावाभिव्यक्ति के लिए उसी प्रकार की भाषा और शैली का उपयोग किया है जो उन भावों एवं प्रसंगों के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

नाटककार के रूप में भवभूति के व्यक्तित्व का परिचय 'महावीरचरित', 'मालतीमाधव' और 'उत्तररामचरित' इन तीन कृतियों द्वारा मिलता है। इन तीनों नाटकों का प्रयोग कालप्रियनाथ की यात्रा के प्रसंग पर किया जाता था। महावीरचरित में वीर रस की प्रधानता के कारण ओज गुण का, मालतीमाधव में श्रृंगार रस की प्रधानता के कारण माधुर्य का और उत्तररामचरितम में करुण रस की प्रधानता के कारण प्रसाद गुण का आधिक्य हैं। उत्तररामचरित की भाषा अत्यंत परिमार्जित एवं प्रसंगानुकूल हैं। भवभूति ने भावपूर्ण हृदय की गहन एवं सच्ची अनुभूति की अभिव्यक्ति सरल शब्दों में की हैं।

भवभूति यह मानते थे कि जिस नाटक में प्रवृत्तियों का अंतर्द्वंद्व दिखाया जाता है, वही नाटक उच्च श्रेणी का होता हैं। जिस नाटक में केवल बाहरी घटकों के साथ के विरोध का वर्णन होता हैं, वह नाटक नहीं, इतिहास है। भाषा और भाव दोनों स्तर पर भवभूति नाटकीय द्वंद्व सृजन में निपुण थे।[7,8,9]

महावीरचरित
महावीरचरित (महावीर श्रीराम की पराक्रमगाथा) भवभूति की प्रथम नाट्य कृति है जिसमें रामायण के पूर्वार्धि की कथा अंतर्गत रामविवाह, वनवास, सीताहरण, रावण–वध एवं राज्याभिषेक तक की मुख्य घटनाएँ सात अंको में वर्णित हैं। इसमें राम को आदर्श मानव रूप में दिखाने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि इसमें नाट्य कला का पूर्ण परिपाक नहीं हुआ हैं; चरित्रचित्रण, रसपरिपाक, भाषा आदि की दृष्टि से भी यह नाटक उच्चकोटी का नहीं कहा जा सकता, तथापि वीर रस का परिपोष इसमें काफ़ी अच्छा हुआ हैं। महावीरचरित में भाव प्रवणता के विपरीत जीवन के कटु सत्य एवं आदर्शो का निरूपण किया गया हैं।

मालती-माधव
यह दस अंकों का प्रेमकथा पर बृहद् नाटक है। इसमें पद्मावती नरेश की पुत्री मालती तथा विदर्भ राज्य के अमात्य के पुत्र माधव के प्रणय का बहुत रोचक व रहस्यपूर्ण वर्णन है। दोनों के प्रणय व विवाह में अनेक घात-प्रतिघात, उत्थान-पतन तथा सफलता-असफलता की भावोत्तेजक अवस्थाएँ आती हैं। आशा-निराशा के झंझावातों में थपेड़ें खाते दर्शक को अंत में दोनों के विवाह से आनंद प्राप्त होता है। इसमें वीर, रौद्र, बीभत्स आदि विभिन्न रसों के साथ श्रृंगार का अपूर्व समन्वय है। रोचक कथानक, यथार्थ तथा विशद चरित्र चित्रण एवं सुंदर काव्यात्मक भाषा के कारण यह महावीरचरित की अपेक्षा आलोचकों द्वारा अधिक सम्मानित हुआ है। 'मालती-माधवम' श्रृंगाररसयुक्त है किन्तु उसका उद्देश्य प्रणय वासना में लिप्त रहना ही नहीं हैं। अपितु भवभूति ने उसमें भी उत्कट प्रेम, मैत्री एवं त्याग की भावना को आदर्शवत प्रस्तुत किया हैं।

उत्तररामचरित
वाल्मिकी रामायण के उत्तरकांड कथानक पर आधारित यह सात अंको में व्याप्त भवभूति का अंतिम एवं सर्वोत्कृष्ट नाटक हैं। जिसमें उनका कवित्व उच्चतम चरम को प्राप्त हुआ है। आलोचकों की मान्यता है कि उत्तररामचरित में भवभूति की कला कालिदास से भी अधिक विकसित है। दूसरे रामकथा के नाटककारों की अपेक्षा भवभूति ने अपने इस नाटक में राम और सीता के पवित्र एवं कोमल प्रेम व अधिक वास्तविकता से चित्रण किया है। इसीलिए महाकवि भवभूति के प्रति गौरवोद्गार के रूप में यह कहा जाता हैं कि –
"नाटके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा ।

उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।।"
कवि ने नाटकीय रूप प्रदान करने के लिए कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' समान इसकी मूल कथा में मौलिक परिवर्तन किए हैं। सीता निर्वासन की परिस्थिति में राम का उत्तरदायित्व समुचित परिप्रेक्ष्य में दिखाकर कवि ने उनके चरित्र को कलंकमुक्त तो किया ही है, और उन्हें एकांत निर्जन वन में अपनी भावना के प्रकाशन का भी अवसर दिया है। रामायण की कथा सीता के पृथ्वीगर्भ में

समाने से दुःखान्त है, किंतु भारतीय नाट्य कला के आदर्शानुसार रामसीता का मिलन कराकर कवि ने दुखांत कथा के प्रतिकुल नाटक को सुखांत स्वरुप प्रदान किया हैं।

उत्तररामचरित विश्व साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक है। भवभूति की नाट्यकला कीर्ति का गौरवस्तंभ भी यही है। उनका प्रौढ़ व्यक्तित्व, प्रकांड पांडित्य तथा जीवन दर्शन उनकी नाट्यकृतियों में पूर्णरूप से प्रतिफलित हुए हैं।

भवभूति और कालिदास

हमारी परंपरा भवभूति को कालिदास के बाद सर्वोच्च कवि मानती आयी है। कालिदास जैसे रससिद्ध कवि तथा सर्वश्रुत नाटककार के सामने यदि कोई तुलनीय माना जाता हैं तो वह महाकवि भवभूति हैं। 'कवय: कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः' ऐसा भी एक प्रचलित सुभाषित है। भवभूति ने उत्कृष्टता में अपने 'उत्तररामचरित' द्वारा कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' को भी पीछे छोड़ दिया है।

इन दोनों की उत्कृष्ट प्रतिभा प्रकृतिजात थी। दोनों की कल्पना और पदरचनामें नितांत सरलता, प्रौढ़ता और रसिकता आदि जो महाकवियों के गुण हैं वो पूर्णरूप से दिखाई देते हैं। कालिदास के समान 'वैदर्भीरीति' और 'गौड़ीरीति' का भी प्रयोग करके भवभूतिने उसे अधिक ऊँचाई पे पहुंचाया है ।

कालिदास के दुष्यंत एवं शकुंतला की वेदना का स्वरुप मुलत: प्रेम मूलक अतृप्ति की वेदना का है इसके विपरीत भवभूति के राम और सीता की विरह व्यथा मुख्य रूप से कर्तव्य एवं त्याग की भावना से आवृत्त है। अतएवः उनके पात्रों की अपेक्षा अधिक व्यापक, स्पष्ट और पवित्र है।

विवहित स्त्री के परित्याग का प्रसंग शाकुंतलम् नाटक में भी है और उत्तररामचरित में भी। दोनों नाटकों में नाटककारों ने समाज की ओछी मनोवृत्तियों पर टिप्पणी की है, किंतु कालिदास की टिप्पणी उतनी तीखी नहीं है जितनी भवभूति की है।

करुण रस का महत्त्व

संस्कृत नाटककारों ने मुख्यत: 'श्रृंगार रस' एवं 'वीर रस' को प्रधान माना है। इसके विपरीत भवभूति ने करुण रस को न केवल मुख्य रस बनाया बल्कि स्पष्ट रूप से इसे अन्य रसों का मूल बिंदू भी बताया है।

भवभूति ने श्रृंगार रस प्रधान 'मालती माधव' और वीर रस प्रधान 'महावीरचरित' नाटक लिखने के बाद अपनी मान्यता स्थापित की है कि करुण रस प्रधान नाटक भी लिखा जा सकता है और उसके आदर्श रूप में 'उत्तररामचरित' की रचना की।'एको रस: करुण एव' इत्यादि श्लोक के माध्यम से भवभूति ने यह स्पष्ट किया है कहा है कि श्रृंगार आदि रस भी करुणरस के ही विवर्त हैं।

यद्यपि करुण रस का प्रयोग तो आदिकवि वाल्मीकि, कालिदास आदि विद्वानों ने किया हैं। तथापि करुण रस का जो स्वरुप हमें भवभूति की रचना 'उत्तररामचरित' में दिखाई देता हैं, वह नि:संदेह रूप से अन्यत्र दुर्लभ हैं। भवभूति का अभिप्राय यही है कि रस चैतन्य का स्वात्मपरामर्श है, उसकी गहनता जितनी करुण में संभव है उतनी अन्यत्र नहीं है। करुणरस श्रृंगार, हास्य एवं क्रोध रसों की अपेक्षा अधिक गहन एवं अधिक व्यापक है।

अंतर्दाह से दग्ध होकर, पीड़ा के ताप से घिरे हुए राम का मन भवभूति ने अपने रचना में चित्रित किया हैं। राम विवश होकर कह रहे हैं – हृदय फट रहा हैं, किंतु दो टुकड़े नहीं होता; शरीर मूर्च्छित हो रहा है, किंतु निर्जीव नहीं होता; आतंरीक ज्वाला जला तो रही है पर राख नहीं बना देती; दैव मेरे मर्म पर प्रहार तो करता है, किंतु मेरे प्राण नहीं हरता।[5,6,7]

भवभूति ने राम के लोकोत्तर चरित्र को साधारण मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण प्रदर्शित किया है। वाल्मीकि रामायण में राम के चारित्रिक दूषण का हरण उनके अवतारी पुरुष होने के आधार पर होता है किंतु इसके विपरीत भवभूति ने उत्तररामचरित में राम की दैवी शक्तियों को मानवीय शक्तियों के रूप में स्थापित किया है। कवि ने 'महावीर चरितम' और 'उत्तर रामचरितम' दोनों ही नाटकों के नायक राम को अवतारी पुरुष के रूप में वर्णित न करते हुए उन्हें एक सामान्य मानव की कसौटी पर कसा है।

परिवर्तीयों पर प्रभाव

परवर्ती सभी लेखक तथा नाटककार भवभूति की कला से प्रभावित हुए हैं। जिनके साहित्य में भवभूति की प्रभूत प्रशंसा उपलब्ध होती है। बाद के नाटककरों ने उनकी रचनाओं को आदर्श मानकर अपने ग्रंथो का प्रणयन किया है, जिसका प्रमाण हमें भवभूति के पश्चातवर्ती जयदेव, मुरारी, राजशेखर आदि कवियों की रचनाओं में देखने को मिलता है।

सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर ने 'बालरामायण' में उन्हें वाल्मिकी का अवतार कहा है; स्वयं भी रामकथा-विषयक नाटक की रचना करने से उन्होंने अपने आपको भवभूति का दूसरा रूप कहने में गर्व का अनुभव किया है। सोड्ढ़ल ने अपने 'उदयसुन्दरीकथा' में लिखा हैं

–"मान्यो जगत्यां भवभूतिरार्यः सारस्वते वत्मनि सार्थवाहः"अर्थात "भवभूति की रचनायें पढ़कर अन्य कविओं ने अपने ग्रंथों की रचना की और उनकी रचनायें भी जगन्मान्य हो गयी। इस तरह भवभूति के ग्रंथ सार्थवाह (मार्गदर्शक) का कार्य करते रहे।"

संस्कृत पंडित सोमदेव ने अपनी रचना 'रसतिलकचंपू' में भवभूति को महाकवि संबोधकर व्यास, भास, कालिदास, भारवी, भर्तृहरि के बराबर का स्थान दिया है। वाक्पतिराज ने अपने 'गौड़वहों' में भवभूति की बड़ी प्रशंसा करते हुए कहा है कि "भवभूति एक अथांग महासागर के समान हैं। उनके शब्द समुद्रमंथन से निकले मधुर अमृतबिंदू के समान हैं। सुभाषित ग्रथों में भवभुति के द्वारा उद्भावित करूण रस की बहुत प्रशंसा हुई है। यह भी कहा गया है कि अन्य कवियों में भी विशेषताएं मिलती हैं किंतु अनिर्वचनीय आनंद भवभूति ही देते हैं –"तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते।"

आचार्य वामन ने अपने 'काव्यलंकारसूत्रवृत्ति' में, आचार्य धनंजय ने अपने 'दशरूपक' में, आचार्य महिमभट्ट ने अपने 'व्यक्तिविवेक' में, मम्मटाचार्य ने अपने 'काव्यप्रकाश' में, महाकवि क्षेमेन्द्र ने अपने 'औचित्यविचारचर्चा' में, विद्याकार ने 'सुभाषितरत्नकोश' में, श्रीधरदास रचित 'सदुक्ति-कर्णामृत' में, शारंगधर ने 'शारंगधरपद्धती' में, गदाधर भट्ट ने 'रसिक जीवन' में, कुंतक कृत 'वक्रोक्तिजीवित', हेमचंद्र कृत 'काव्यानुशासन', सोभाकारमित्र कृत 'अलंकाररत्नाकर', बल्लाल देव कृत 'भोजप्रबंध', धनिक कृत 'दशरूपावलोक', अभिनवगुप्त कृत 'तंत्रलोक' एवं 'अभिनवभारती', राजा भोज कृत 'शृंगारप्रकाश' एवं 'सरस्वतीकण्ठभरण' में भवभूति के पदों को उद्धृत किया है। विद्याकार, जल्हण, वसुकल्प आदि प्रभुतियों ने भी भवभूति के श्लोकों को उद्धृत किया है। वीर राघव, त्रिपुरारी, जगद्धर, घनश्याम, विश्वनाथ, रामचंद्र, गुणचन्द्र, महिमान, अनंतपंडित, पूर्णसरस्वति आदि संस्कृत पंडितोंने भवभूति के साहित्य पर टीकाग्रंथों की रचना कर उनके साहित्य की प्रशंसा की है।

उनकी कलम स्त्री विषयक अनेक भ्रांत धारणाओं, सड़े-गले मुल्यों, समयातीत सोच, परम्पराओं और रुढ़ियों पर प्रहार करती है। भवभूति ने प्रेम की विषयवस्तु उठाई और उसमें गांभीर्य और दार्शनिकता का प्रयोग किया। उनका मानना था कि – "योग, सांख्य, वेद, उपनिषद द्वारा प्राप्त ज्ञान का नाट्य के रचना में लाभ ही क्या ? नाटकीय काव्यात्मकता, कल्पना की सृजनता, अभिव्यक्ति का माधुर्य और काव्यार्थ की सधनता ही सच्चे ज्ञान और प्रतिभा के सूचक है।"

भवभूति ने अपने नाटकों में कुछ नये प्रयोग भी किये। उन्होंने एक बार रामायण-कथा की प्रस्तुति वीर और अद्भुत रसों के निदर्शन रूप में की, तो दूसरी बार करुण के। यह एक नयी प्रवृत्ति थी, तथा उनकी सराहना के लिए समय अपेक्षित था। और तत्कालीन विद्वान् और पंडितों ने उनकी कड़ी आलोचना की। इस आलोचना के प्रत्युत्तर में भवभूति कहते हैं –

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥
अर्थात "जो लोग मेरी रचना का उपहास करते हुए मेरी अवज्ञा कर रहे हैं उनका ज्ञान संकुचित है । मैंने मेरी रचना उनके लिए नहीं रची है। मेरा समानधर्मा कोई न कोई गुणग्राही रसिक आगे पीछे कभी न कभी अवश्य ही जन्म लेगा और मेरी रचनाओं का उचित मूल्यांकन करेगा, क्योंकि काल भी अनंत हैं और संसार (वसुंधरा) भी विशाल हैं।"

III. परिणाम

भवभूति एक महान नाटककार हुए । सर्वसम्मति से उत्तररामचरित भवभूति की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस अंतिम नाटक में उन्होंने अपनी पहले की असफलताओं से पाठ ग्रहण किया है तथा कला के उद्धेश्य को भलिभाँति समझा है ।किसी भी रचना का महत्व उसके अलंकार सौष्ठव तथा साहित्यिक आडम्बर की अपेक्षा उसमें निहित मानव स्वभाव तथा जीवन की व्याख्या के स्वरुप में ही है । धार्मिक विधानों से जकड़े हुवे तथा पूर्णरुप से पुरुषों के अधिकृत समाज में स्त्री का स्थान स्वभावत; गौण होता है । वास्तव में वह दासी ही थी और अधिक से अधिक उसका गौरव आदर्श गृहिणी के रुप में था , ऐसी गृहिणी जो अपने 'निर्माणभाग ' से संतुष्ट हो , पति का किसी भी अवस्था में विरोध न करें तथा सपत्नियों को भी सखी भाव से देखे – ऐसे वातावरण में प्रेम –पुष्प यथार्थत; कभी विकसित नही हो सकता । स्वयंवर तथा गांधर्व विवाह पद्धति का भी उल्लेख मिलता है परन्तु इनके अनुकुल आचरण नियम के अपवाद के रुप में ही था । बहुविवाहजन्य नैतिकता के प्रभाव के कारण दाम्पत्य प्रेम जीवन में तो दुर्लभ सा ही था और केवल कवि की कल्पना के आदर्श के रुप में ही स्थित था । ''इस पृष्ठभूमि में यह ध्यान देने योग्य बात है कि भवभूति के नायक एकपत्निव्रती है तथा उनके लिये प्रेम सर्वग्राही भावना है '' ।उत्तररामचरित की कथा के चरित्रों को वास्तविक मानव रुप देकर तथा उनके भावों की गंभीरता तथा अगाधता का चित्रण करकें भवभूति ने यह दिखाया है कि राम और सीता के समान हृदय की भाषा को जानने वाले दम्पत्ति के जीवन में प्रथम प्रेम का उल्लास चिरस्थायी तथा चिरनूतन हो सकता है –जब पति पत्नि की छोटी छोटी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुवे तथा प्रेमी ही बना रहता है –जैसे राम सीता के उपधान के लिये अनन्याश्रित अपने बाहु को ही

उपस्थित करते है , और जब स्नेहशीला तथा सहानुभूतिशीला पत्नि को पति के स्थिर प्रसाद में दृढ़ विश्वास है । विरह भी ऐसे प्रेम के बंधन को तोड़ नही सकता तथा विपत्तियाँ भी उसके उच्छवास को कुचल नही सकती ।[3,4,5]

भवभूति ने इस नाटक की रचना गम्भीर चिन्तन के पश्चात ही की होगी । इसके पीछे कला की तात्विक धारणा की प्रेरणा स्पष्ट परिलक्षित होती है । दूसरे अंक में वर्णित महर्षि वाल्मिकी के शब्द –ब्रह्म –प्रकाश की घटना से नाटक की रचना के समय की भवभूति की अपनी मनस्थिति भी लक्षित होती है । वे नान्दी के द्वारा इष्टदेव की कृपा तथा दश्किगणों की शुभेच्छा प्राप्त करने की प्रचलित प्रथा को नही अपनाते । इसके स्थान पर वे पूर्व कवियों को प्रणाम करते है तथा दैवी वाक् का आव्हान करते है – इसी से क्या उनकी मनस्थिति की सूचना नही मिलती है ? भवभूति के सामने केवल कथावस्तु का निर्वाचन करके उसे आवश्यक परिवर्तनों के साथ नाटकीय रुप में प्रस्तुत करने की ही समस्या नही थी पर उसे एक प्रभावपूर्ण सुबद्ध रचना का रुप देने के लिये एक प्रमुख नाटकीय समस्या के स्वरुप का निर्धारण करके उसी के अनुरुप कथा –विकास की समग्र रुपरेखा में अवसर के अनुकूल रंग भी भरने थे । नाटक की घटनाएँ परस्पर सम्बद्ध है तथा मुख्य कथाबिन्दु के विकास में पूर्णरुप से सहायक सिद्ध हुई है ।

कथावस्तु को प्रस्तुत करने में भवभूति ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है । नाट्यशास्त्र में वर्णित रस की उपलब्धि के लिये ही वे नाटक की घटनाओं में ही शारीरिक व्यापार की अपेक्षा भाववर्णन की ओर अधिक सचेत है ऐसा नही है ''वास्तव मे तो वे जिस कथानक को ले रहे है उसमें मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रधानता अनिवार्य तथा उपयुक्त ही है ।''इस नाटक की एक विशेषता लम्बे स्वगत भाषणों का प्रयोग है जो अन्य संस्कृत नाटकों में विरल ही है । प्रथम अंक में निर्वासन के भयावह निर्णय के अवसर पर तथा द्वितीय अंक में जनस्थान में पूर्व घटनाओं के स्मरण के अवसर पर हुवे राम के स्वगत भाषण गंभीर मनौवेज्ञानिक तथ्यों का उद् घाटन करते है । उनका नाटकीय मूल्य चाहे सबको स्वीकार न हो पर पात्र के चरित्र के उद् घाटन में उनकी महत्ता के विषय में कोई संदेह नही है । यह पद्धति शेक्सपियर की ट्रेजेडियो में प्रयुक्त स्वगतभाषण के बहुत निकट है और इसीलिये यदि किसी का यह आक्षेप है कि नाटक में यथार्थतः कुछ होता नही है तो उसे नाटक में वर्णित मानसिक परिवर्तन तथा भावोद्वेलन के ह्रदयस्पर्शी दृश्यों को ही देखना चाहिये । और यह भी निर्विवाद है कि इस मनोवैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग के बिना नाटक में विसंगतिहीन पुनर्मिलन की प्राप्ति तथा विशेष रुप से स्त्री के प्रति उचित न्याय भावना को उपन्यस्त करना असम्भव ही होता ।

उनके अन्य दो नाटको की अपेक्षा उत्तररामचरित में नाटक की शिल्पविधि –तकनीक –तथा वस्तुग्रथन में अधिक कुशलता बर्ती गई है । प्रथम अंक में प्रस्तावना से लेकर निर्वासन तक संवाद चित्रदर्शन की घटना आदि में भावी कथानक के दृढ़ आधार का निर्माण हुवा है तथा इसमें घटनाओं का विकासक्रम स्वाभाविक बन पड़ा है । दूसरे अंक में भी संवाद के प्रवाह में बारह वर्ष के लम्बे कालान्तर की घटनाओं का सम्बन्ध सूत्र स्वाभाविक रुप से कथाप्रसंग में जोड़ दिया गया है , विशेषकर प्रकृति दृष्टव्य परिवर्तनों के वर्णन में तो प्रकृति के साथ साथ मानव पात्रो की शारीरिक तथा मानसिक परिस्थिति की भी सूचना मिलती है । प्रकृति के परिवर्तनों से लम्बी अवधि के बीत जाने की जो प्रतीति होती है वह ऐसी अनजाने में तथा स्वाभाविक रुप में होती है कि उनके ग्रथन के पीछे काम करने वाले सावधान कलासंधान की उपस्थिति का भान बिना विश्लेषण के होना कठिन ही है । विष्कम्भकों का प्रयोग भवभूति ने निराले ही ढंग से किया है । पारिभाषिक अर्थ में भुत तथा भविष्य की आवश्यक घटनाओं से अवगत कराने के लिये इनके प्रयोग में विशेष कुशलता अपेक्षित नही है । पर इन्हें नाटकीय सूचना के लिये तथा भाव परिणाम के संतुलन के लिये प्रस्तुत करने में रचना कौशल की पकड़ अत्यावश्यक है ।

नाटक में अतिलौकिक तत्वों के प्रयोग में भी भवभूति की नुपुणता दृष्टव्य है ।पौराणिक गाथाओं के पात्र प्राचीनकाल से ही देवरुप में पूजे जाते रहे है और कलाकार के लिये नाटक में उनकों उनके इस देवत्व से पृथक करना असंभव सा ही है और कदाचित उन्हें साधारण मानव के रुप में प्रस्तुत करना उपहासास्पद भी होता है । इसीलिये उत्तररामचरित में राम, सीता , वाल्मीकि तथा अरुन्धती आदि में देवत्व का कुछ अंश है , अन्य देवत्वपूर्ण पात्रों का की स्थानों पर उल्लेख हुवा है , अर्धदेवता विद्याधर दम्पती तो रंगमंच पर ही आते है तथा अन्त में गर्भनाटक भी दैवी विभूतियों द्वारा भरतमुनि के निर्देशन में खेला जाता है पर भवभूति ने इन पात्रों के देवत्व के रंग को बहुत कुछ हल्का कर दिया है । अधिकतर तो उन्हें परदे के पीछे ही रखा गया है , जहाँ वे मंच पर आते भी है वहाँ उनका अतिलौकिक रुप प्रच्छन्न है । राम और सीता अपने पौराणिक रुप में होने पर भी अपने भावपूर्ण मानवोचित दाम्पत्य स्नेह से ही हमें प्रभावित करते है । नदियाँ तो मानवी ही प्रतीत होती है तथा उनके मूलस्त्रोत का पता तो सूचना से ही मिलता है । यहाँ यह स्मरणीय है कि अतिलौकिक तत्वों का प्रयोग अधिकतर दृश्यों में प्रसंगवशात् ही हुवा है । वे नाटक के विकास में अनिवार्य नही है , जब ऐसे तत्व नाटक के कथाविकास के अंगभूत रुप में प्रयुक्त होते है तभी वे वस्तुविधान के दोष को द्योतित करते है । यहाँ भवभूति ने इन तत्वों का आनुषंगिक रुप में प्रयोग करते हुवे इन्हें स्वाभाविक बना दिया है ।इससे भी अधिक वस्तुविधान की कुशलता का परिचय उनके नाटकीय सोत्प्रास (पताका स्थानक)के यथोचित प्रयोग में मिलता है । पुरे नाटक में इनका साभिप्राय तथा सुन्दर प्रयोग हुवा है । (पहला अंक लक्ष्मण के द्वारा अग्निपरीक्षा का उल्लेख तथा राम की प्रतिक्रिया , सीता को राम का यह आश्वासन कि यह तो चित्र है , वियोग का भय मत करो , भावी वियोग के आगमन के अवसर पर पुरानी घटनाओं की स्मृति , दुर्मुख का वचन , राम से पंचवटी में चलने का अनुरोध तथा उनके द्वारा सीता को कठिनह्रदया होने का उपालम्भ और तृतीय अंक में सीता की छायारुप में उपस्थिति से दु;खपूर्ण व्यंग्य की सूचना ।)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 5, September 2021 |

दोष ;-

उत्तररामचरित के दोष सतह पर ही है जिनके लिये गतिपूर्ण शारीरिक क्रिया तथा घटनाओं का शीघ्र घात प्रतिघात ही नाटक के आवश्यक तत्व है उन्हें इस नाटक की काव्य रचना तथा गंभीर भावव्यंजना रिझा न सकेगी । इन बाद के तत्वों से कदाचित इसे महान काव्यकृति कहा जा सकता है पर यह भी लगता है कि नाटक के रुप में उत्तररामचरित ऊँचे स्तर पर नही पहुँच पाता है । वैसे प्रथम अंक में दुखावह व्यंग्य , तृतीय अंक में सीता के द्वारा शनै शनै किये गये आत्मसमर्पण का वर्णन , लवकुश के व्यक्तित्व का वर्णन तथा गर्भनाटक की रचना इत्यादि प्रसंगों की रचना में इनके कलाकौशल की अत्यधिक प्रशंसा हुई है ।

इनके कविरुप की सफलता ही इनकी नाट्यरचना की दुर्बलता है । नाटक रचना के लिये अत्यावश्यक है कथा के प्रति निर्विकार भाव , पर भवभूति का दृष्टिकोण कविकलाकार का है और इसके फलस्वरुप वे कभी कभी भावावेग में बह जाते है तथा मुख्य उद्देश्य को भूल जाते है – यह दृष्टिकोण ही उनके नाटक की कमियों के लिये उत्तरदायी है । उन्होंने कथा के विकास को गतिमान घटनाक्रम की अपेक्षा भावव्यंजक चित्रपरम्परा के रुप में प्रस्तुत करना अधिक उचित समझा । वे भाववर्णन में ऐसे डुब जाते है कि प्राय; कथा का भावसंवेदन का माध्यम मात्र रह जाता है , वह प्राणवान व्यक्तित्वपूर्ण चरित्र नही रहता ।

वास्तविक चरित्र निरुपण की कमी ही इस नाटक का प्रमुख दोष है । कभी कभी इनका भावावेग आत्मा की गहराई को मथ देता है पर कभी कभी उसकी अति हो जाती है वहाँ स्वाभाविक भावचित्रण भी काव्यत्वपूर्ण आडम्बर मात्र रह जाता है । पद सौष्ठव के प्रति झुकाव , जिससे कोई कवि अछूता नही रह सकता , उन्हें भाषा के ऐसे प्रदर्शन के लिये प्रेरित करता है जो उनकी कृति के नाटकीय रुप को ध्वस्त कर देता है ।

यह ठीक है कि उत्तररामचरित में इन दोषों का परिहार करने का प्रयत्न हुवा है पर फिर भी ये अपना स्वरुप प्रकट किये बिना नही रहते ।नाटक का तर्क सम्मत रुपविधान काव्यत्वपूर्ण तथा भावपूर्ण दृष्टिकोण के कारण स्पष्टतया लक्षित नही होता है । कोई सहृदय समालोचक सावधान विश्लेषण के पश्चात ही उसकी रुपरेखा को समझा सकता है । राम का भावावेग गंभीर तथा हृदय की गहराईयों से उठा हुवा है , पर आसूँ तथा मूर्च्छा की अधिकता निरन्तर शोकशल्य तथा मर्मच्छेदन का उल्लेख यदि खटकता नही है तो भी अस्वाभाविक तो लगता ही है । राम, सीता , वासन्ती तथा लव के अतिरिक्त नाटक में वास्तविक चरित्र चीत्रण दुर्लभ ही है । भाषा प्रशंसा है पर वास्तविक संवाद कही कही पर दिखता है तथा सीता के संवादों में भाषा चमत्कार का प्रयास तथा छठे अंक के विष्कम्भक युद्ध वर्णन के प्रतिकुल ही है ।

शैली -

भाषा का गौरव तथा शब्द चमत्कार भावानुरुप भाषा का प्रयोग , शब्द भंडार की समृद्धता , भाव के अनुकुल छंदों का प्रयोग , करुण रस के लिये शिखरिणी की उपयुक्तता - ‘‘भवभूतेर्शिखरिणी निरगलितरंगिणी रुचिराघनसंदर्भे मयुरीव नृत्यति ‘‘

इस प्रकार कला की दृष्टि से भवभूति सर्वश्रेष्ठ रचनाकार माने जाते है । सम्पूर्ण संस्कृत जगत वे एक सफल एवं परिष्कृत नाटककार है ।[2,3,4]

नटराज शिव के ‘ताण्डव’ और भगवती पार्वती के ‘लास्य’ नृत्य से विश्वरूपी रंग-मंच पर जिस नाट्यविधा का प्रवर्तन हुआ, उसमें ब्रह्मानन्दसहोदर अनिर्वचनीय रसानुभूति का मनोविज्ञान से गहरा सम्बन्ध है। नाटक में अलंकार-योजना, रस-निष्पत्ति, संवाद, बिम्ब-विधान आदि में मनोविज्ञान स्पष्ट रूप से निहित होता है। कवि-प्रसूत भाव भाषिक स्वरूप में रस, अलंकार, संवाद आदि तत्वों को समाहित करके नाटक के पात्रों के मनोविज्ञान को पर्यवेक्षकों पर इस प्रकार आरोपित कर देता है कि कवि की मनोवैज्ञानिकता नाटकीय पात्रों के मनोविज्ञान के रूप में समग्र नाटक के मनोवैज्ञानिक तत्वों से सहृदयों को चमत्कृत कर भाव-गाम्भीर्य से ओत-प्रोत कर देता है।

इसी भाव-गाम्भीर्य और अनिर्वचनीय रस अनुभूति को सबसे महत्वपूर्ण मानकर संस्कृत नाटकों में अपना विशेष महत्व रखने वाले महाकवि भवभूति का ‘उत्तररामचरितम्’ नाटक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। महाकवि भवभूति की सात अंकों की प्रौढ़ कृति ‘उत्तररामचरितम्’ उनका सर्वस्व है। कहा भी गया है - "उत्तररामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।"

भवभूति, संस्कृत के महान कवि एवं सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। इनके नाटक, कालिदास के नाटकों के समतुल्य माने जाते हैं। भवभूति ने अपने सम्बन्ध में ‘महावीरचरितम्’ की प्रस्तावना में लिखा है। ये विदर्भ देश के ’पद्मपुर’ नामक स्थान के निवासी श्री भट्टगोपाल के पोते थे। इनके पिता का नाम ‘नीलकण्ठ’ और माता का नाम ‘जतुकर्णी’ था। इन्होंने अपना उल्लेख ’भट्टश्रीकण्ठ पछलांछनी भवभूतिर्नाम’ से किया है। इनके गुरु का नाम ’ज्ञाननिधि’ था। ‘मालतीमाधवम्’ की पुरातन प्रति में प्राप्त ’भट्टश्रीकुमारिलशिष्येण विरचितमिदं प्रकरणम्’ तथा ’भट्टश्रीकुमारिल प्रसादात्प्राप्त वाग्वैभवस्य उम्बेकाचार्यस्येयं कृति’ इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि श्रीकण्ठ के गुरु कुमारिल थे जिनका ’ज्ाननिधि’ भी नाम था और भवभूति ही मीमांसक ‘उम्बेकाचार्य’ थे जिनका उल्लेख दर्शन ग्रंथों

में प्राप्त होता है और इन्होंने कुमारिल के 'श्लोकवार्तिक' की टीका भी की थी। संस्कृत साहित्य में महान् दार्शनिक और नाटककार होने के नाते ये अद्वितीय हैं। पाण्डित्य और विदग्धता का यह अनुपम योग संस्कृत साहित्य में दुर्लभ है। राजतरंगिणी के उल्लेख से इनका समय एक प्रकार से निश्चित सा है। ये कान्यकुब्ज के नरेश यशोवर्मन के सभापंडित थे, जिन्हें ललितादित्य ने पराजित किया था। 'गउडवहो' के निर्माता वाक्यपतिराज भी उसी दरबार में थे। अतः इनका समय आठवीं शताब्दी का पूर्वार्ध सिद्ध होता है।

महाकवि भवभूति के महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् और उत्तररामचरितम् - ये तीन रूपक प्रसिद्ध हैं। सात अंकों के नाटक महावीरचरितम् में राम-सीता विवाह से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की घटनाओं के साथ राम के महावीरत्व को मुख्य रूपेण वर्णन का विषय बनाया गया है, तो दश अंकों के प्रकरण मालतीमाधवम् में मालती और माधव की प्रणय कथा का वर्णन उपलब्ध होता है। वस्तु, नेता, रस की दृष्टि से उपर्युक्त दोनों रचनाओं में महाकवि भवभूति ने परम्परा का ही निर्वहन किया है, लेकिन उत्तररामचरितम् में उन्होंने अनेक विलक्षण प्रयोग कर परम्परा की बेड़ियों से स्वयं को मुक्त कर नये रूप में उपस्थित करने का प्रयास किया है और उन्हें अपूर्व सफलता भी मिली है। परम्परावादी श्रृंगार तथा वीर रस को ही अंगीरूपेण स्थान देने के आग्रही रहे हैं जबकि इन्होंने उत्तररामचरितम् में करुण रस को अंगीरूपेण स्वीकार करते हुए स्पष्ट उद्घोष किया है कि -"एको रसः करूण एव।". साथ ही करूण रस का वर्णन इतना प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया है कि विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से इसे मान्यता प्रदान करते हुए कहा कि - "कारूण्यं भवभूतेरेव तनुते।"

स्त्री जाति के प्रति भी भवभूति की दृष्टि मान्य परम्परा से भिन्न है और उन्होंने उसके प्रचलित भोग्या रूप वर्णन के स्थान पर पूज्या रूप से उपस्थित कर उसकी हृदय की पवित्रता को रूपान्वित करने में अपना सन्निवेश दिखलाया है। संस्कृत कवियों का प्रकृति के बहिर्जगत् के मनोरम दृश्य का वर्णन अभीष्ट रहा है, लेकिन भवभूति ने प्रकृति के मनोहारी पक्ष के साथ ही साथ भयानक और वीभत्स पक्ष को भी असाधारण कौशल के साथ निबद्ध किया है।

विषयों के प्रस्तुतीकरण में अपनी विलक्षणता का परिचय देकर भवभूति ने मानव मन की अतल गहराईयों में भी उतरकर उसके विश्लेषण का जो स्तुत्य प्रयास किया है, वह अत्यन्त दुष्प्राप्य है। दाम्पत्य जीवन की पराकाष्ठा दम्पती का परस्पर तादात्म्यीकरण है और यही भवभूति को भी अभीष्ट है, जिसे उन्होंने राम-सीता के परस्पर अनुराग के द्वारा व्यक्त किया है, लेकिन सीता निर्वासन के पश्चात् सीता के मन की राम के प्रति तटस्थता और तत्पश्चात् दण्डकारण्य में राम की हृदय विदारक विह्वलता का छायारूपिणी सीता के द्वारा प्रत्यक्षीकरण करा कर उन्होंने जिस प्रकार एक पीड़िता स्त्री के मनोमालिन्य का उदात्तीकरण दिखाया है, यह कोई मानव मन का पारखी ही कर सकता है। चित्त का उदात्तीकरण ही उन्मुखता की ओर प्रवृत्त कर सकता है और तब तादात्म्यीकरण सम्भव है जो दाम्पत्य प्रेम की मूल आधारशिला है।
महाकवि भवभूति ने सीता के चित्त के उन्मुखीकरण के माध्यम से मानव मन की सहज अवस्थाओं का बड़ी सूक्ष्मता से क्रमिक उत्कर्ष दिखाया है। यह सत्य है कि इन प्रसंगों के वर्णन से कथा प्रवाह अवरूद्ध सा लगता है, लेकिन इसके द्वारा राम-सीता के अन्तस् के तादात्म्यीकरण की लम्बी दूरी भवभूति तय कर लेते हैं और यही नाटककार का उत्तररामचरितम् में अभीष्ट है। सीता और राम के मानसिक स्थिति में आये उतार-चढ़ाव को भवभूति ने अत्यन्त कुशलता से प्रकट किया है।

जैसा कि ज्ञात है कि नाट्य शास्त्रीय ग्रंथों में आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य अभिनय की चर्चा मिलती है। नाटकों में कला सम्बन्धी किसी भी पक्ष का वर्णन, भाषा, अलंकार, संगीत, नृत्य चित्रकला, रंगसज्जा, स्थापत्य, मूर्तिकला आदि का एक स्थान पर वर्णन नाट्य शास्त्र में ही मिल जाता है।

"रसाभावाह्यभिनयाधर्मीवृत्तिप्रवृत्तयः। सिद्धिः स्वरास्तथा तोद्यं गानं रङ्गश्चसंग्रहः॥"
भरत के अनुसार एकादश सिद्धांत मिलकर नाटक की प्रकृति का निर्माण करते हैं। इसमें प्रथम सिद्धांत राशि है शेष भाव से रंग तक सभी रस उत्पत्ति के साधक माने गए हैं।

पंचम वेद की संज्ञा से विभूषित कला के उत्कृष्टतम रूप नाटक का स्रष्टा निश्चय ही विभिन्न विशेषताओं से युक्त होता है जो उसकी लेखिनी से प्रतिभाषित होता है। इस परिप्रेक्ष्य में भवभूति सुसंस्कृत साहित्य मर्मज्ञ व अनुशासित हैं। वह सार्वदेशिक व सार्वकालिक सूक्तियों के उद्गाता ही नहीं अनिर्वचनीय आनन्द के प्रदाता भी हैं। भवभूति का अनुपम वैशिष्ट्य है कि वह मानवीय मूल्यों के सफल प्रस्तोता हैं। वैयक्तिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, भौतिक, राजनैतिक जीवन मूल्यों के साथ ही जनकल्याण परक तथा प्रेमपरक जीवनमूल्यों की बड़ी सहजता से प्रस्तुत करते हैं। भवभूति ने शाश्वत जीवन मूल्यों यथा- सत्य, अहिंसा, आदर, विनम्रता, अतिथि के प्रति श्रद्धा, शिष्टवाणी, कृतज्ञता, पर्यावरण बोध इत्यादि का सम्यक् उपास्थापन अपनी कृतियों करते हुए अपने कवित्व धर्म का सम्यक् निर्वहण किया है। वास्तव में भवभूति के द्वारा उपस्थापित जीवनमूल्य उनके व्यक्तित्व तथा समसामयिक परिस्थितियों से से निर्मित हैं। उनकी कृतियों में संस्कारों की स्वीकृति है तो सारहीनता के विरुद्ध अस्वीकृति भी दिखाई देती है। वर्तमान काल में भी भवभूति के जीवन मूल्य प्रासंगिक हैं।

रूपक आनन्द से युक्त होते हैं। इसका लक्ष्य सहृदय को अलौकिक आनन्द रूप रस का आस्वादन कराना है। नाटक से केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती अपितु ब्रह्मानंद सहोदर अनिर्वचनीय आनंद की प्राप्ति भी होती है। नाट्य विधा और मनोविज्ञान का अन्तःसम्बन्ध ज्ञात करने के लिए नाट्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के पीछे का मनोविज्ञान समझना जरूरी है।

मनोविज्ञान में भाव की प्रधानता होती है। कथानक के भेद, पंच अर्थप्रकृतियाँ, पंच अवस्थाएँ, पंच सन्धियाँ इनका वस्तु के अंतर्गत विवेचन होता है। वस्तु और बिम्ब विधान के अन्तर्गत मनोविज्ञान के तत्व अन्वेषित किये गये हैं। संवाद के अन्तर्गत प्रकाश, स्वगत, आकाशभाषित, विष्कम्भक, अपवारित और जनान्तिक का विवरण है। इसके बाद नेता अर्थात नायक और नायिका का सभेद विश्लेषण किया गया है। नायक एवं नायिका के सहायकों का मित्र एवं विदूषक आदि के रूप में विवेचन प्राप्त होता है। विदूषक रहित नाटक में मनोविज्ञान खासकर मनोरंजक संवाद को ढूंढना रुचिकर रहा। नाटक के ध्वनि और रस का विश्लेषण मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। रस सिद्धांत के विवेचनकारो की चिन्तन शैली भी मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। लोक के प्रसंग में स्थायीभाव, सुखदुःखमोहात्मक है लेकिन नाटक में काल्पनिक अनुभव प्रत्यक्ष के समान होने पर लोक के सत्य से विलक्षण है। अतएव सहृदय के मनोविज्ञान को भी देखा गया है क्योंकि -"करूणादावपि रसे जायते यत् परं सुखम्।[7,8]

सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्॥" नाटक के ध्वनि और रस का विश्लेषण मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। लोक के प्रसंग में स्थायीभाव सुख-दुखरूपात्मक है लेकिन नाटक में काल्पनिक अनुभव प्रत्यक्ष के समान होने पर भी लोक के सत्य से विलक्षण है। इसलिए नाटक के माध्यम से सहृदय सामाजिक को स्पन्दित करने में समर्थ रस का भी मनोविज्ञान के सम्बन्ध को भी देखा गया है और इस विषय पर भी संक्षिप्त चर्चा की गई है। "मन एव मनुष्याणां कारणं मोक्षबन्धयोः। बन्धाय विषयासक्तं मुक्तये निर्विषयं स्मृतम्॥" उपनिषद् के इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य के बन्धन या अनुरक्ति और मोक्ष या रस प्राप्ति का कारण मन ही है। अतः मन के विज्ञान का सम्बन्ध मनुष्य की हर क्रिया से है। नाट्य के प्राङ्गण में नाटककार के मनोवैज्ञानिक स्थिति का निरूपण पात्रों के संवाद एवं चरित्र के द्वारा किया जाता है। इसलिए नाट्य के अंतर्गत विद्यमान मनोवैज्ञानिक तत्व का विश्लेषण नाटक एवं नाटककार दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाता है। उदाहरणार्थ - भवभूति के उत्तररामचरितम् में स्त्री विषयक मनोविज्ञान के रूप में प्रथम अंक के इस पद्य में यह वचन प्राप्त होता है - "यथास्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।" यहाँ समाज में स्त्री की पवित्रता विषयक मनोविज्ञान का निदर्शन है। चिरकाल से वर्तमान तक यह सामाजिक सोच और मनोविज्ञान का एक ऐसा पक्ष है कि नारी चरित्र को मापने का यही एक पैमाना सा प्रतीत होता है।

नाटक के प्रारम्भ में ही नट पूर्णगर्भा सीता को छोड़कर यज्ञ में गए हुए गुरुजनों की बात करता है। पूर्णगर्भा सीता की देखरेख की जिम्मेदारी युवा राम पर छोड़कर पुत्री और जामाता के यज्ञ को विशेष महत्व देना सामाजिक मनोदशा को दर्शाता है कि किसी भी परिस्थिति में पुत्री और जामाता का विशेष स्थान है। भारतीय समाज में यह परिदृश्य आज भी देखने को मिलता है। नाटककार सार्वकालिक स्थिति की प्रतीति कराते हुए कहते कि अग्नि द्वारा सीता की शुद्धि का प्रमाण दे दिए जाने पर भी लोग उस विषय में शंका कर रहा है -
"देव्यामपिहिवैदेह्यां सापवादो यतोजनः। रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः॥"

यहाँ स्त्री पवित्रता विषयक मानसिकता या मनोविज्ञान का निरूपण विचारणीय है। "लोकापवाद यदि श्रीराम तक पहुंचेगा तो श्रीराम को बहुत कष्ट होगा" - इस मानवीय स्वभाव को ध्यान में रखकर ही भवभूति ने शुभ चिंतक के रूप में नट के द्वारा कहलाया है - "सर्वथा ऋषयो देवताश्च श्रेयो विधास्यन्ति।" यह शुभकामना शुभचिन्तक की मनोदशा को दर्शाता है। शुभचिन्तक सदैव प्रिय जनों की हित की कामना करते हैं तथा संकट को टालने के लिए देवताओं से प्रार्थना करते हैं।

जनक जी जब मिथिला वापस चले जाते हैं तब पुत्री सीता की मनःस्थिति का निदर्शन होता है। स्त्री मनोविज्ञान के इस पक्ष भी भवभूति ने विचार किया है। यहाँ सीता का कथन है - संतापकारिणो बंधुजनविप्रयोगा भवन्ति। अर्थात प्रिय जनों का वियोग संतापकारिणी होता है। ऋष्यश्रृंग के आश्रम से अष्टावक्र अयोध्या आकर सीता को कुल गुरु वशिष्ठ का संदेश देते हैं कि तुम सूर्य और वशिष्ठ जैसे गुरु वाले कुल की कुलवधू हो। यहाँ उच्चकुल का एहसास कराना मानव मनोविज्ञान के उस शिक्षण पक्ष को दिखलाता है कि कुल के मर्यादा के अनुकूल उचित आचरण करना आवश्यक है। श्रीराम के कुलगुरु वशिष्ठ और सूर्य धैर्य और दृढ़ता के प्रतीक हैं। इसलिए सीता को सांकेतिक रूप में विपरीत परिस्थिति में भी धैर्य मर्यादा और श्रेष्ठ आचरण का संकेत यहाँ किया गया है। सर्वज्ञ त्रिकालद्रष्टा ज्ञाता ऋषि का केवल "वीरप्रसवा भूयाः" कहकर सीता को आशीर्वाद देना तथा सुख प्रसन्नता आदि का आशीर्वाद नहीं देना भी उस व्यक्ति के मन को बतलाता है कि सत्य जानते हुए व्यक्ति कितना असमर्थ हो जाता है ! अपने मनोगत को गर्भवती सीता से स्पष्ट कह भी नहीं पाता है। पितृतुल्य ऋषि "किमन्यदाशामहे" कह कर ही स्वयं को रोक लेते हैं। परिस्थिति को ध्यान में रखकर संतुलित और सकारात्मक वक्तव्य से आशीर्वाद देना ऋषि के कल्याणकारी स्वभाव को दर्शाता है। ऋषि के मनोविज्ञान को प्रकट करता है। अनुकूल वचनों से संतुष्ट करने की रीति समाज में सर्वत्र दर्शनीय है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि महाकवि भवभूति के नाटक में मनोविज्ञान के तत्त्व प्रचूर मात्रा में हैं।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 5, September 2021 |

मनोविज्ञान न केवल मानव व्यवहार का अध्ययन करता है अपितु मानव व्यवहार को उद्दीप्त करने वाले विभिन्न तत्वों का भी अध्ययन करता है। मानव व्यवहार को विभिन्न तत्व प्रभावित करते हैं। इस दृष्टि से मनोविज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वस्तुतः पाश्चात्य मनोविज्ञान ने हमें पशु-प्रवृत्तियों का गुलाम बनाकर स्वच्छन्द जीवन जीने, अनैतिक आचरण करने के लिए खुली छूट दे दी है। इस पर अंकुश लगाने व जीवन को सही ढ़ग से जीने का शिक्षण भारतीय प्राच्य मनोवैज्ञानिकों ने प्रस्तुत किया है।[8]

IV. निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति मातृ शक्ति के प्रति श्रद्धाभाव रखने वाली है और "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" यह उक्ति इसका प्रमाण है। वस्तुतः उत्तररामचरितम् में सीता पीड़िता पात्रा के रूप में चित्रित की गयी है। यही कारण है कि महाकवि भवभूति ने इस नाटक में अपने कवित्व का पूरा उपयोग राम के प्रति तटस्थ हृदय बनी सीता के चित्त के उन्नयन के लिए किया है। इस क्रम में सीता द्वारा वर्धित पादप और हस्ती शावक जैसे दो प्रतीकों का भी उपयोग किया गया है। तथ्य यही है कि पीड़ितजन के प्रति समाज की विशेष जिम्मेदारी बनती है। यह उन्हें अपनी प्रकृति में स्थित होने के निमित्त बल प्रदान करता है। वर्त्तमान की इस सदी में जहाँ विद्रूप वैभव का शिकार होकर सामान्य जन उपेक्षित महसूस कर रहा है, पीड़िता सीता के प्रति भवभूति की यह दृष्टि सामान्य जनमानस के उद्वेलित चित्त को शीतलता प्रदान करता है।[9]

संदर्भ

1.भवभूति, डॉ. वासुदेव विष्णु मिराशी, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेअ, दिल्ली प्रथम संस्करण 1972 ईस्वी
2.भवभूति के नाटक, डॉ. बृज बल्लभ शर्मा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 1973
3.भवभूति और उनकी नाट्यकला, डॉ. अयोध्या प्रसाद सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 1969
4.महाकविभवभूतिप्रणीतम् उत्तररामचरितम्, सम्पादक डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी संस्करण तृतीय, 2014 ईस्वी
5.महाकविभवभूतिप्रणीतम् उत्तररामचरितम्, सम्पादक जनार्दनशास्त्री पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास नईदिल्ली संस्करण प्रथम 1963 ईस्वी
6.महाकविभवभूतिप्रणीतम् महावीरचरितम्, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1926
7.महाकविभवभूतिप्रणीतम् महावीरचरितम्, आचार्य श्रीरामचन्द्रमिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 2009
8.महाकविभवभूतिविरचितम् मालतीमाधवम्, डॉ. गंगासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 2002
9.मानवमूल्यपरक शब्दावली का विश्वकोश - मैनी, सरूप एण्ड सन्स, दिल्ली - 2005